न्याय दर्शन में ज्ञान का स्त्रोत (प्रमाणवाद)

ज्ञान → वस्तुओं की अभिव्यक्ति को ज्ञान कहते हैं। जैसे दीपक वस्तुओं को प्रकाशित करता है वैसे ही ज्ञान अपने विषयों को प्रकाशित करता है अर्थात स्पष्ट करता है। ज्ञान से ही हमारे संपूर्ण व्यवहार का सम्पादन होता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में बहुधा 'बोध' और 'ज्ञान' का प्रयोग पर्यायवाची पदों के रूप में किया जाता है। यहाँ पर 'बोध' एक सरल प्रत्यय है। साधारणतः ज्ञाता की चेतना में विषय जिस रूप में उपस्थित होता है उसे 'बोध' की संज्ञा दी जाती है।

ज्ञान के संप्रत्यय को समझने के लिए 'त्रिपुटि ज्ञान' के संप्रत्यय को समझना होगा। त्रिपुटि ज्ञान का अर्थ है – ज्ञान के तीन संघटक तत्व – ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का साधन'। ये तीनों तत्व किसी भी ज्ञान के लिए अपरिहार्य हैं।

ज्ञाता → विषय को जानने वाला; (कलम को जानने वाला)।

ज्ञेय → जिसका ज्ञान हो रहा है; (कलम का)।

ज्ञान का साधन (प्रमाण) → 'इन्द्रियानुभव' (जिससे कलम को जाना जा रहा है।)

इस प्रकार से ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान के साधन (प्रमाण) के सम्मिलित रूप को 'ज्ञान' कहा जाता है जो कि एक सरल प्रत्यय है

⇒ न्याय दर्शन के अनुसार, ज्ञान आत्मा का विशेष गुण है। ज्ञान दो प्रकार का होता है – प्रमा और अप्रमा।

1) प्रमा (Real Knowledge) → 'यथार्थानुभवः प्रमा'। अर्थात् यथार्थ ज्ञान ही प्रमा है। इसका तात्पर्य है कि जो वस्तु जैसी है उसको वैसे ही जानना, जैसे- रस्सी को रस्सी। यह असंदिग्ध अनुभव है तथा इसमें स्मृति, भ्रम आदि नहीं आते।

२) अप्रमा (Unreal Knowledge) → 'तद्भाववति तत्प्रकारकानुभव: अप्रमा'।

अप्रमा अयथार्थ ज्ञान है। अर्थात् इसमें जो वस्तु जैसी है उसको वैसा न जानकर अन्य जाना जाता है: जैसे - रस्सी को साँप जानना। इसके अन्तर्गत संशय, विपर्यय (भ्रम) और तर्क आते हैं।

प्रमा या यथार्थज्ञान के प्रकार → प्रमा चार (४) प्रकार की होती है। (न्यायानुसार) - प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द।

अप्रमा के प्रकार → इसके भी चार (४) भेद होते हैं - स्मृति, संशय, विपर्यय और भ्रम।

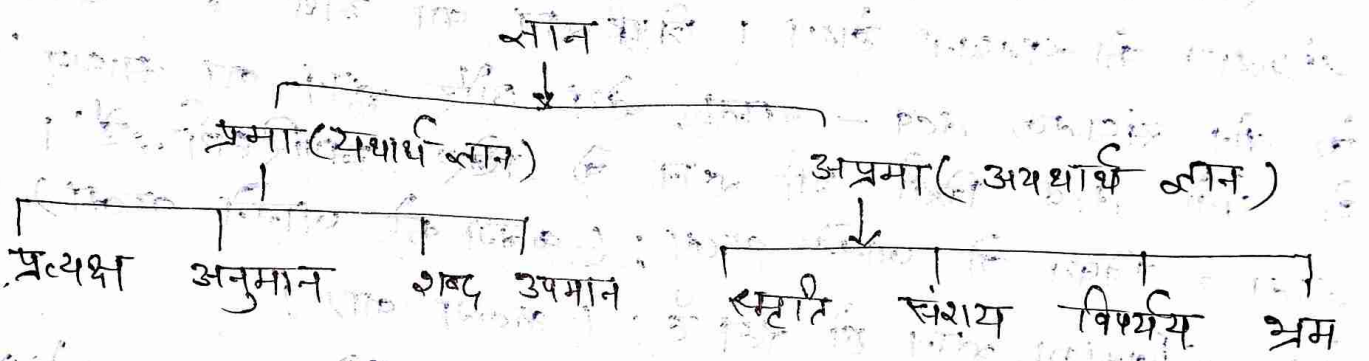

न्याय दार्शनिक ज्ञान की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता प्रवृत्ति साफल्य या असाफल्य मानने के कारण प्रामाण्य और अप्रामाण्य दोनों परत: स्वीकार करते हैं। अत: ज्ञान की उत्पत्ति के बाद ही ज्ञान के प्रामाण्य और अप्रामाण्य का ज्ञान होता है।

इस प्रकार से न्याय दार्शनिक प्रमा के अर्थात् यथार्थ ज्ञान के चार (४) साधन बताते हैं -

① प्रत्यक्ष प्रमाण (Perception)
② अनुमान प्रमाण (Inference)
③ शब्द प्रमाण (Authority or Testimony)
④ उपमान प्रमाण (Analogy)

प्रमाण → यथार्थ ज्ञान के प्राप्ति के साधन को प्रमाण कहते हैं।
(यथार्थानुभव: प्रमा तत्साधनं च प्रमाणम् - तर्कसंग्रह)

प्रत्यक्ष प्रमाण

सभी दर्शनों में 'प्रत्यक्ष' को प्रथम प्रमाण का स्थान प्राप्त है। इसके महत्व के अनेक कारण हैं, जैसे -

(अ)- इसे सभी (आस्तिक और नास्तिक) दर्शन पूर्णत: स्वीकार करते हैं।

(ब)- यह अन्य सभी प्रमाणों का आधार है।

(स). इसकी परीक्षा के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है, यथा — 'प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम् ?'

परिभाषा एवं शाब्दिक अर्थ → महर्षि गौतम के अनुसार " इन्द्रिय और अर्थ (वस्तु) के सन्निकर्ष (समीपता) से उत्पन्न ऐसा ज्ञान, जो भाषा पर आधारित न हो, जो भ्रामक न हो, तथा जो अनिश्चित न हो, वह प्रत्यक्ष है।"

यथा - "इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नम् ज्ञानम् ।
अव्यपदेशमव्याभिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्षम् ॥" (न्यायसूत्र, 1/1/4)

नव्य न्याय के अनुसार, प्रत्यक्ष का लक्षण साक्षात् प्रतीति है।
"प्रत्यक्षस्य साक्षात्कारित्वम् लक्षणं"। (गंगेश उपाध्याय के अनुसार)

प्रत्यक्ष शब्द दो शब्दों से बना है — 'प्रति + अक्ष'। 'प्रति' का अर्थ होता है - 'सामने' और 'अक्ष' का अर्थ है - 'आँख'। अत: प्रत्यक्ष का शाब्दिक अर्थ हुआ - "आँख के सामने"। दूसरे शब्दों में, आँखों के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाये वह प्रत्यक्ष है।

प्रत्यक्ष के भेद :→ न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष के अनेक प्रकार बताए गए हैं। परन्तु प्रत्यक्ष के दो मुख्य भेद हैं — लौकिक और अलौकिक।

① लौकिक प्रत्यक्ष → इन्द्रियों का वस्तु से संपर्क होने पर जिस ज्ञान की उपलब्धि या प्राप्ति होती है, वह लौकिक प्रत्यक्ष है।

२) अलौकिक प्रत्यक्ष :→ जब बिना इन्द्रियों के संपर्क के ज्ञाता को वस्तु का ज्ञान होता है तो उसे अलौकिक प्रत्यक्ष कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है - सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण, योगज प्रत्यक्ष।

इस प्रकार से यहाँ पर हम पहले प्रत्यक्ष प्रमाण के भेदों को निम्नलिखित चार्ट द्वारा समझ सकते हैं :—

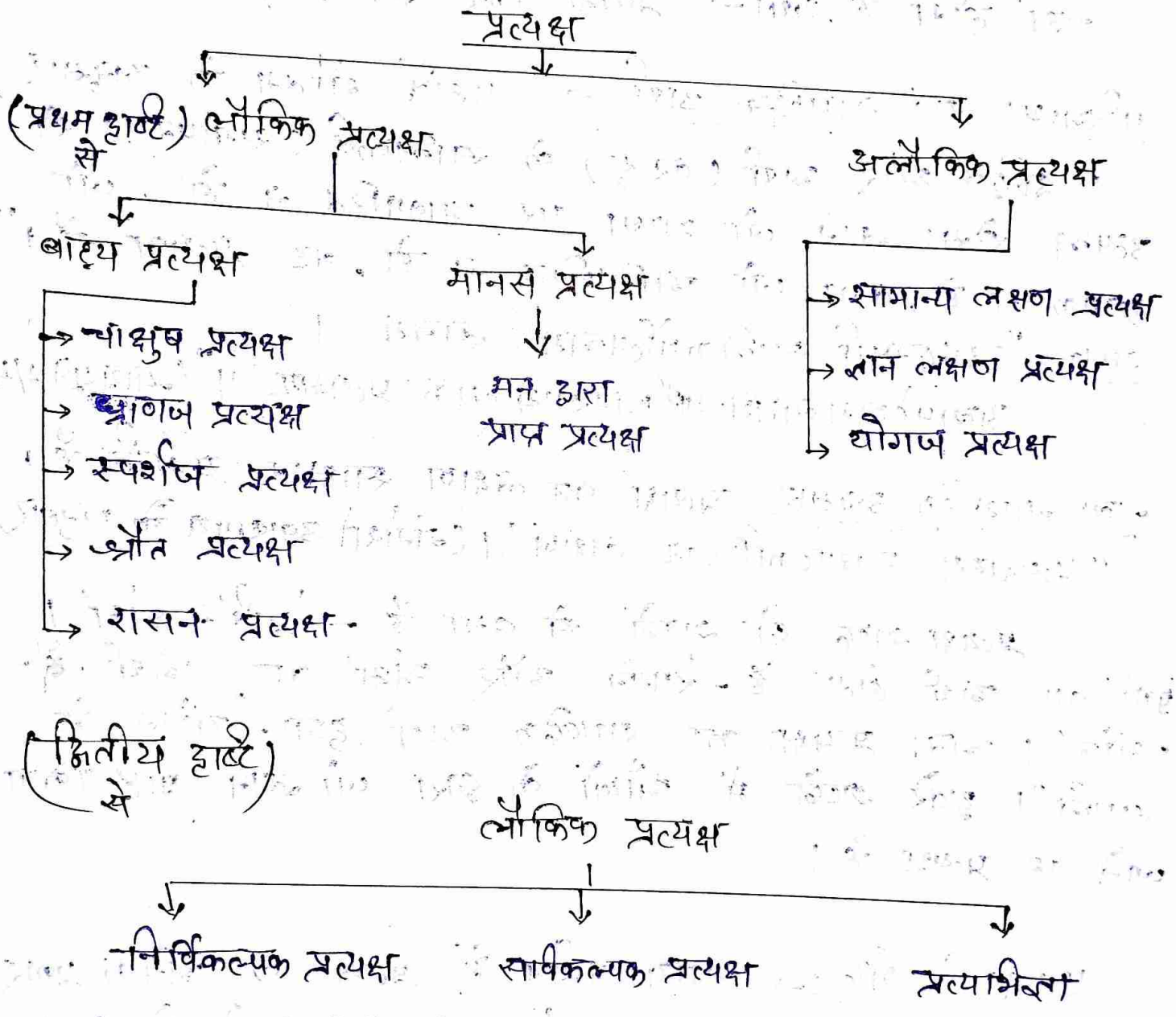

इस प्रकार से, प्रत्यक्ष ज्ञान की प्रक्रिया में ज्ञानेन्द्रिय के अतिरिक्त मन नामक अतिरिन्द्रिय भी होती है।